दलित उत्थान के मसीहा 'फुले'

ज्योतिबा फुले

प्रखर विचारक एवं क्रांतिकारी महात्मा ज्योतिबा फुले दूरदर्शी समाज सुधारक थे, जिन्होंने ऐसे विषयों पर बहुत पहले विचार किया और उसे लागू करने की कोशिश की, जिन पर अन्य लोगों ने आजादी के बाद सोचना शुरू किया। उन्होंने विशेष तौर पर महिलाओं और पिछड़ी जातियों की शिक्षा के लिए कार्य किया, जिसके लिए देश उन्हें हमेशा याद रखेगा।

देश में लड़कियों और महिलाओं की छवि बदली है, शहर से लेकर गांवों तक रसोई के बजाए लड़कियां स्कूल और ऑफिस में दिखने लगी हैं। यही बदलती तस्वीर ही ज्योतिराव गोविंदराव फुले के ख्वाब की हकीकत है, जिन्होंने समाज में औरतों को पुरुष के बराबर का दर्जा दिलाने और दलितों को सम्मानजनक जिंदगी बिताने के ख्वाब को अधिकार सहित पूरा किया। महाराष्ट्र में जिन लोगों ने स्त्री-शिक्षा और अछूतोद्धार का काम किया, उनमें ज्योतिबा फुले का नाम सबसे पहले आता है। फुले का जन्म महाराष्ट्र के सतारा जिले में एक माली जाति परिवार में हुआ। उनके पिता गोविंदराव सब्जी बेचने का काम करते थे। जब वह नौ महीने के थे तब उनकी मां का निधन हो गया। फुले को प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद उन्हें परिवार के कृषि कार्य में अपने पिता की मदद के लिए पढ़ाई छोड़नी पड़ी। बारह वर्ष की आयु में उनका विवाह सावित्री बाई फुले से हुआ। उन्होंने अपनी हाईस्कूल की पढ़ाई 1847 में पूरी कर ली। वह थॉमस पेन की पुस्तक 'राइट्स आफ मैन' से खासा प्रभावित हुए। इससे उनके भीतर सामाजिक न्याय को लेकर एक गहरी समझ पैदा हुई और वह भारतीय जाति व्यवस्था के आलोचक बन गए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए पिछड़ी जातियों की महिलाओं की शिक्षा आवश्यक है। 63 वर्ष की आयु में उनका 28 नवम्बर, 1890 को निधन हो गया।

बनाए शिक्षा के मंदिर

1848 में शूद्रातिशूद्र (दलित) लड़कियों के लिए एक स्कूल की स्थापना की। 1848 में दलित लड़कियों के लिए स्कूल खोलना अपने आप में एक क्रांतिकारी कदम है। क्योंकि इसके 9 साल बाद बंबई विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। उन्होंने 1848 में मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो का प्रकाशन किया था। 1848 में यह स्कूल खोलकर फुले ने उस वक्त के समाज के ठेकेदारों को नाराज कर दिया था। उनके पिता गोविंदराव जी भी उस वक्त के सामंती समाज के बहुत ही महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। दलित लड़कियों के स्कूल के मुद्दे पर बहुत झगड़ा हुआ, लेकिन फुले ने किसी की नहीं सुनी। नतीजतन, उन्हें 1849 में घर से निकाल दिया गया। सामाजिक बहिष्कार का जवाब फुले ने 1851 में दो और स्कूल खोलकर दिया। जब 1868 में उनके पिताजी की मृत्यु हो गई तो उन्होंने अपने परिवार के पीने के पानी वाले तालाब को अछूतों के लिए खोल दिया। 1873 में फुले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना की और इसी साल उनकी पुस्तक गुलामगिरी का प्रकाशन हुआ।

धर्म-जाति के कड़े विरोधी

फुले के चिंतन के केंद्र में मुख्य रूप से धर्म और जाति की अवधारणा है। वे कभी भी हिंदू धर्म शब्द का प्रयोग नहीं करते। वे उसे ब्राह्मणवाद के नाम से ही संबोधित करते हैं। उनका विश्वास था कि अपने

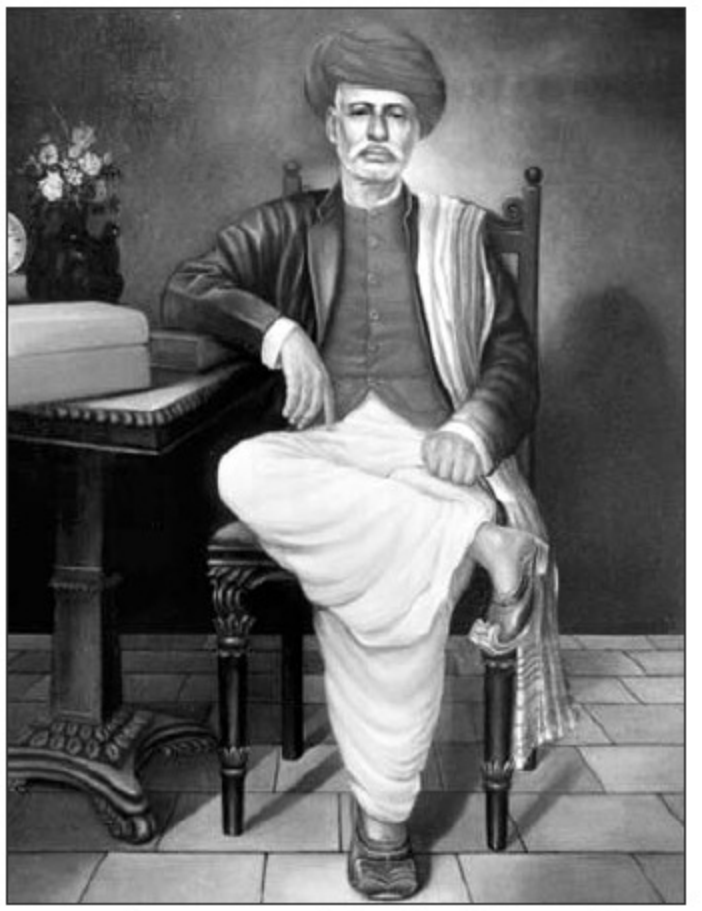

एकाधिकार को स्थापित किए रहने के उद्देश्य से ही ब्राह्मणों ने श्रुति और स्मृति का आविष्कार किया था। इन्ही ग्रंथों के जरिए ब्राह्मणों ने वर्ण व्यवस्था को दैवी रूप देने की कोशिश की। फुले ने इस विचारधारा को पूरी तरह खारिज कर दिया। फुले को विश्वास था कि ब्राह्मणवाद एक ऐसी धार्मिक व्यवस्था थी जो ब्राह्मणों की प्रभुता की उच्चता को बौद्धिक और तार्किक आधार देने के लिए बनाई गई थी। न्यायशास्त्र में सत की जानकारी के लिए जिन 16 तरकीबों का वर्णन किया गया है, वितंडा उसमें से एक है। फुले ने इसी वितंडा का सहारा लेकर ब्राह्मणवादी वर्चस्व को समाप्त करने की लड़ाई लड़ी। उन्होंने विष्णु के विभिन्न अवतारों का जोरदार विरोध किया। उनकी धारणा थी कि न्याय पर आधारित व्यवस्था ही कारगर व्यवस्था सिद्ध होगी। ब्राह्मणवादी धर्म के ईश्वर और आर्यों की उत्पत्ति के बारे में उनके विचार को समझने के लिए जरूरी है कि यह ध्यान में रखा जाए कि महात्मा फुले इतिहास नही लिख रहे थे। वे सामाजिक न्याय और समरसता के युद्ध की भावी सेनाओं के लिए बीजक लिख रहे थे।

नहीं मानते थे कर्म विपाक

फुले ने कर्म विपाक के सिद्धांत को भी खारिज कर दिया था, जिसमें जन्म जन्मांतर के पाप-पुण्य का हिसाब रखा जाता है। उनका कहना था कि यह सोच जाति व्यवस्था को बढ़ावा देती है इसलिए इसे फौरन खारिज किया जाना चाहिए। फुले के लेखन में कहीं भी पुनर्जन्म की बात का खंडन-मंडन नही किया गया है। यह अजीब लगता है क्योंकि पुनर्जन्म का आधार तो कर्म विपाक ही है। फुले ने जाति को उत्पादन के एक औजार के रूप में इस्तेमाल करने और ब्राह्मणों के आधिपत्य को स्थापित करने की एक विधा के रूप में देखा। उनके हिसाब से जाति भारतीय समाज की बुनियाद का काम भी करती थी और उसके ऊपर बने ढांचे का भी। उन्होंने शूद्रातिशूद्र राजा, बालिराज और विष्णु के वामनावतार के संघर्ष का बार-बार जिक्र किया है। ऐसा लगता है कि उनके अंदर यह क्षमता थी कि वह सारे इतिहास की व्याख्या बालि राज-वामन संघर्ष के संदर्भ में कर सकते थे।

सामाजिक परिवर्तन के हिमायती

स्थापित व्यवस्था की खिलाफत करने वाले फुले क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन की बात करते थे। उन्होंने चातुर्वण्य व्यवस्था को खारिज किया। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त का, जिसके आधार पर वर्ण व्यवस्था की स्थापना हुई थी, को फर्जी बताया और लैवर्णिक व्यवस्था की बात की। वे समतामूलक और न्याय आधारित समाज की स्थापना पर जोर देते थे। उनकी सोच-रचनाओं में किसानों और खेतिहर मजदूरों के लिए विस्तृत योजना का उल्लेख है। पशुपालन, खेती, सिंचाई व्यवस्था सबके बारे में उन्होंने विस्तार से लिखा है। गरीबों के बच्चों की शिक्षा पर उन्होंने बहुत जोर दिया। 150 साल पहले कृषि शिक्षा के लिए विद्यालयों की स्थापना की बात भी डनहोंने कही थी। कहते हैं कि 1875 में पुणे और अहमदनगर जिलों का किसान आंदोलन फुले की प्रेरणा से ही हुआ था। इस दौर के समाज सुधारकों में किसानों के बारे में विस्तार से सोच-विचार करने का रिवाज नहीं था, लेकिन फुले ने इसे अपने आंदोलन का हिस्सा बनाया।

स्त्रियों के बारे में फुले के विचार क्रांतिकारी थे। मनु की व्यवस्था में सभी वर्णों की औरतें शूद्र वाली श्रेणी में गिनी गई थीं, लेकिन फुले ने स्त्री-पुरुष को बराबर समझा। उन्होंने औरतों की आर्यभट्ट यानी ब्राह्मणवादी व्याख्या को गलत बताया। फुले ने विवाह प्रथा में बड़े सुधार की बात की। प्रचलित विवाह प्रथा के कर्मकांड में स्त्री को पुरुष के अधीन माना जाता था, लेकिन फुले का दर्शन हर स्तर पर गैर बराबरी का विरोध करता था। उन्होंने पंडिता रमाबाई के समर्थन में लोगों को लामबंद किया। वे धर्म परिवर्तन के समर्थक नहीं थे, लेकिन महिला द्वारा अपने फैसले खुद लेने के सैद्धांतिक पक्ष का उन्होंने समर्थन किया।

फुले की किताब गुलामगिरी बहुत कम पृष्ठों की एक किताब है, लेकिन इसमें बताए गए विचारों के आधार पर पश्चिमी और दक्षिणी भारत में बहुत सारे आंदोलन चले। उत्तर प्रदेश में चल रही दलित अस्मिता की लड़ाई के बहुत सारे सूत्र गुलामगिरी में ढूंढ़े जा सकते हैं। आधुनिक भारत, महात्मा फुले जैसी क्रांतिकारी विचारकों का हमेशा आभारी रहेगा।